हिन्दी - विभाग

डॉ० कविता कुमारी सिंह

B. A, III

विषय :— साधारणीकरण —

काव्य पढ़ते या नाटक देखते-देखते पाठक या दर्शक उतने तन्मय हो जाते हैं कि स्व-तत्व की भावना से ऊँचे उ वर्णनों या दृश्यों को देखकर रोते और प्रसन्न हैं। यद्यपि रोना भी उस दशा में आनन्द ागता है, तो यही दशा साधारणीकरण है।

'साधारणीकरण' का व्युत्पत्तिजन्य स्वरू ाधारणी + करण। च्वि प्रत्यय अभूत तद्भ ोता है, अर्थात् जो वस्तु पहले जैसी नहीं ह सा हो जाना। अतः साधारणीकरण का अर्थ असाधारण को साधारणता में परिणत

० वासुदेवनन्दन प्रसाद ने अपनी पुस्तक विश्लेषण में लिखा है — "काव्य जीवन संबंधित कवि के हृदय की मार्मिक व्यक्ति

मैं बाँट देने के लिए आकुल - व्याकुल होने लगता
उसकी अनुभूतियाँ, उसकी कामनाएँ और अभिलाषाएँ
इतनी प्यारी होती है कि उन्हें छिपाकर रखने में
हो जाता है। वह व्यक्ति से विश्व बन जाता है।
हृदय की इस मंगलकामना को काव्यशास्त्र में 'सा
करण कहते हैं।" किन्तु यह अवधारणा बड़ी ही
है। साधारणीकरण के संबंध में आधुनिक विद्वानों
आचार्य शुक्ल, डॉ० श्यामसुन्दर दास, डॉ० नगेन्द्र
आचार्य नन्द दुलारे बाजपेयी, डॉ० गुलाबराय
प्रमुख विद्वानों ने विस्तार से विचार किया है
साधारणीकरण के सिद्धान्त के प्रति विद्वानों के
में मतभेद है।

साधारणीकरण शब्द का संबंध भ
स सिद्धान्त से चला आ रहा है। इसका सर्व
योग आचार्य भट्टनायक ने रस निष्पत्ति सं
विभावानुभाव व्यभिचारी संयोगाद्रस निष्पत्तिः
के अन्तर्गत किया है। उन्होंने अपने पूर्ववर्ती
के दोषों को दूर करने के

तथा अनुभूतिवाद की स्थापनाओं में जो तटस्थ आत्मतत्व दोष आ जाते हैं उनके परिहार के लिए साधारणीकरण की स्वीकृति आवश्यक है।

'भट्टनायक' काव्य में प्रयुक्त शब्दों को व्यापार मानते हैं— अभिधा व्यापार, भावकत्व तथा भोजकत्व व्यापार। प्रथम अभिधा व्याप परम्परा से चला आता है, किन्तु भावकत्व व भोजकत्व भट्टनायक की मौलिक कल्पना है। अभि व्यापार का फल वाच्यार्थ प्रतिपादन, भावकत्व रसादि भावना है और भोजकत्व से रसास्वादन भट्टनायक के अनुसार 'साधारणीकरण' भावकत्व व्य एक अंश है जो अपनी प्रमुखता के कारण सम्पू का प्राण है। यह साधारणीकरण विभावों, अनुभाव व्यभिचारी भावों का होता है।

भट्टनायक के बाद अभिनवगुप्त ने भावकत्व तथा भोजकत्व शक्तियों को अस्वीका भी साधारणीकरण को स्वीकार किया है। उनके साधारणीकरण के दो स्तर हैं — एक स्तर पर व्यक्ति विशिष्ट संबंध छूट जाता

दूसरे स्तर पर सामाजिक का व्यक्तित्व बन्धन न
हो जाता है।

अभिनवगुप्त के बाद आचार्य विश्वनाथ न
आचार्य जगन्नाथ ने भी इस विषय पर विचार
किया है। आचार्य विश्वनाथ का मत है – "साधारण
के समय रत्यादि स्थायीभाव सामान्य प्रतीत होता
विभावादि का इस प्रकार भेद नहीं किया जा
अथवा ये मेरे हैं या अन्य के हैं। आचा
विश्वनाथ के मत की व्याख्या स्पष्ट नहीं हुई है

आधुनिक काल के पूर्व तक इस
पर किसी ने पुनर्विचार नहीं किया। आधुनिक विच
आचार्य शुक्ल ने सबसे अधिक विस्तार से सा
करण सिद्धान्त की व्याख्या की है और डॉ० आन
दीक्षित ने अपने संबंध 'काव्य के रस' मत
स्थापना की है। आचार्य शुक्ल के अनुसार
किसी भाव का कोई विशेषत्व इस रूप में न
जाता है कि वह सामान्यतः सबके उसी भाव
आलम्बन हो सके, तबतक उसमें रसोद्बोधन
शक्ति नहीं आती। इसी रूप में लाया जाना स
कहलाता है।